International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 216-218

वैदिक काल में राजनीतिक तत्व

डॉ० दुर्गेश सिंह
पी–एच॰डी॰, राजनीति विज्ञान, राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

ऋग्वैदिक काल एक यायावरणीय, पशुचारण अर्थव्यवस्था की स्थिति तथा गतिशील विचरणशील अर्थव्यवस्था में युद्ध होते रहना एक सामान्य प्रवृत्ति थी क्योंकि आर्थिक हितों के कारण संघर्ष स्वाभाविक प्रवृत्ति है ऐसी परिस्थिति संकेत करती है कि वैदिक युग में ''किसी पेंचीदा राजनतिक संगठन के विकास की कोई संभावना नहीं थी।'' यह सत्य है कि तेजी से बार–बार युद्ध की घटनाओं ने नेता की आवश्यकता को बल प्रदान किया होगा, किन्तु ऋग्वेद में उल्लिखित राजन को किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र पर स्थायी रूप से शासन करने वाला राजा नहीं माना जा सकता।''[1]

आधुनिक सन्दर्भ में राजनीतिक अवधारणाओं के माध्यम से क्षेत्रीयता को इंगित करने वाले जनपद, राष्ट्र, राज्य जैसे शब्दों का उल्लेख कम प्रचलित हुआ लगता है। अब अगर एक संप्रभु राज्य के आधुनिक आवश्यक घटक राजा जो कि एक स्थायी जनसंख्या और भौगोलिक क्षेत्र का मुखिया होता है। वह राजन (वैदिक कालीन पद) कबिलों का मुखिया होता था।'' जैसा कि दैववात को एक 'सृंजय' कहने से पता चलता है।''[2] अतः ऋग्वैदिक काल का राजन कबायली मुखिया मात्र था और एक योद्धा या पुरोहित ही था। उसे जनस्थ गोपा अथवा गोपित व जनराजन कहा गया है क्योंकि जन अथवा कबीले की रक्षा करने वाला, गौऊओं, को संपत्ति के रूप में प्रस्तुत करना इस राजन का कर्तव्य था। गणपति, ब्रातपः विशपति, आदि का उल्लेख भी इसी बात का संकेत करते हैं कि राजन कोई पैत्रक शासक नही था अपितु कबीले का ही सर्वोसर्वा था। इस ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख आर.एस.शर्मा ने फ्राम गोपति टु भूपति के अपने लेख में किया है।

''राजा के बारे में यह संकेत भी उपलब्ध होता है कि राजाओं की चर्चा जिस सन्दर्भ में होता है वह निरंकुश अधिपति नहीं था। प्रारंभिक वैदिक राजा वही कहलाता था जो युद्ध इत्यादि का नेतृत्व करता था।''[3]

राजा का पद व महत्व रणक्षेत्र में उकसी वीरता पर आश्रित था। चूंकि इतिहास के किसी काल खण्ड में जैसी आर्थिक, सामाजिक प्रक्रिया व उससे जुड़ी सरलता जटिलता होती है वैसी ही राजनीतिक संस्था होगी। चूंकि ऋग्वैदिक संस्कृति पशुचारणी अर्थ व्यवस्था पर आधरित थी तो उसी प्रकार के मूल्यों की स्थापना और राजा के गुणों की संकल्पना की गई उस समय युद्ध होते थे और छापे मारे जाते थे तो जो कुछ भी लूट का माल होता था वह वैध संपत्ति मानी जाती थी। युद्ध का नेतृत्व करने के अतिरिक्त राजा से अपेक्षा की जाती थी कि वह उदार होगा, शरणागतों और अपने समर्थकों की रक्षा करेगा। एक राजा की मर्यादा इस बात से नहीं आकी जाती थी कि वह कितने बड़े क्षेत्र का मालिक है, बल्कि इस बात से आंकी जाती थी कि उसके अधीन कितने लोग हैं।

राजा के कर्तव्य और अधिकारों को देखते हुए यह माना जा सकता है कि उस काल में प्रशासनिक मशीनरी के विकास का बहुत ही कम प्रमाण मिलता है। सेनानी, पुरोहित ग्रामीण अर्थात् ग्राम का प्रधान इत्यादि शब्दों का किसी निश्चित, विधिवत अधिकारी तंत्र का संगठित होना नहीं प्रतीत होता।

एक मंत्र में राजा को वीर सैनिकों का मुख्य प्रेरणास्रोत बताया गया है वह स्वयं सेना के साथ शहस्त्रों शत्रुओं का नाश करने वाला बताया गया है। ''इन्द्रों मन्थतु मन्थिता शक्रःशूरः पुरन्दरः। यथा हनाम सेना अमित्राणां हसस्त्रशः।।''[4]

अर्थववेद में सुव्यवस्था की स्थापना की गई है जिसके अनुरूप ही प्लेटों ने अपने न्याय सिद्धांत की कल्पना की है। सन्तुलन समन्वया की स्थापना ही धर्म या सबसे बड़ा नियम, कानून है समाज में ब्राह्मण को अपना अध्ययन–अध्यापन स्वतंत्र चिंतन मनन करने का अवसर प्राप्त हो क्षत्रियों को बलिष्ठ और शस्त्र विद्या में नियुण होकर अपने न्याय और शौर्य आदि गुणों का विस्तार करना चाहिए और राष्ट्र को र्सपुरूषों की सभा द्वारा सब सुखों से युक्त बनाना चाहिए। व्यापार आदि करने वाले व्यापारी वैश्य को भी सब स्थानों तक अबाध गति से जाकर राष्ट्र के लिए धनवृद्धि करने की सुविधा प्राप्त होनी चाहिए।

ऐसा संकेत मिला है कि प्रारंभिक वैदिक राजा अपने लोगों अर्थात् जानों द्वारा चुना जाता था। ऐसी स्थिति में जब किसी प्रकार की स्थायी और वृत आधारित नियमित सेना के निर्वाह के लिए संसाधनों की कोई व्यवस्था नहीं थी, राजा अपने उन लोगों पर ही आश्रित था जो सैन्य संचालन का काम करते थे यद्यपि राजा युद्ध में सैन्य संचालय का काम करते थे यद्यपि राजा युद्ध में लूट से प्राप्त और जनों द्वारा दी जाने वाली बलि के कारण अन्य लोगों से समृद्ध होता था फिर भी वह लोगों के समर्थन पर ही आश्रित था।

''जहां तक उन संस्थाओं का प्रश्न है जो व्यक्तियों के व्यवहार से जुड़े मुद्दों पर नियम, कायदे–कानून के प्रश्नों पर विचार करते हैं तो आम सभाओं का अस्तित्व प्रारंभिक वैदिक शासन तंत्र की विशिष्टता थी। ऐसे जन समुदाय में विदथ, सभा और समिति शामिल थे। विदथ एक ऐसा संगठन था जिसमें स्त्री पुरूष सभी भाग लेते थे। ऐसे जमवाड़े झगड़े सुलझाने के केन्द्र होते थे। ऐसे भी साक्ष्य मिलते हैं यहां संपत्ति का पुर्न वितरण भी किया जाता था।''[5]

विदथ का महत्व समय के साथ बढ़ता गया हालांकि धीरे–धीरे इसका स्थान सभा और समिति ने ले लिया। सभा का विशिष्ट स्थान था जिसके सदस्य केवल विशिष्ट जन ही हुआ करते थे। जबकि समिति के सदस्य आमजन भी हो सकते थे। राजा इन सभा और समितियों में भाग लिया करता था और आपसी झगड़ों को सुलझाने का कार्य करता था। सभा और समिति दोनों ही संस्थाओं का शासन पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता था। राजा के अभिषेक के लिए भी इनकी सम्मति आवश्यक समझी जाती थी। ऋग्वेद में न केवल राजा और समिति के बीच पूर्ण सहमति अपितु समिति के सदस्यों

के बीच परस्पर मतैक्य पर बल दिया गया है।

उत्तर वैदिक काल में भारतीय इतिहास में पहली बार राजतंत्र की उत्पत्ति पर प्रकाश पड़ता है। ऋगवेद कालीन अनेक छोटे कबीले एक दूसरे में विलीन होकर बड़े क्षेत्रगत जनपदों को जन्म दे रहे थे पूरू और भरत मिलकर कुरू एवं तुर्वश एवं क्रिवी मिलकर पंचाल कहलाए।'' उत्तर वैदिक कालीन राजनीतिक गतिविधियों में करू पंचाल और इनके जैसे बड़े–बड़े जनपदों का ही बोलवाला था। करू पंचाल के राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ किए, जिससे इस बात का संकेत मिलता है कि ऐसे राष्ट्रों की सैन्य शक्ति, उनके विकास का महत्वपूर्ण कारक थी। क्षेत्रीयता का तत्व अब उभर रहा था– यह इस बात से पता चलता है कि पैतृक राजतंत्र और राष्ट्र की अवधारणा के स्पष्ट उल्लेख प्राप्त है।''[6]

अर्थववेद में कहा गया है कि ''राष्ट्र राजा के हाथों में हो तथा राजा वरूत, वृहस्पति देव, इन्द्र एवं अग्नि उसे दृढ़ बनाए। तैत्रिरीय संहिता तथा शतपथ ब्राह्मण में क्रमशः कहा गया है कि कर्मकांड को पूर्णरूपेण सम्पन्न कर राजा राष्ट्र प्राप्त करता है तथा राजा राष्ट्रभृत अर्थात् साम्राज्य का पोषक है। शतपथ ब्राह्मण में ही दुष्टरीतु पौंसायन का प्रसिद्ध उदाहरण है जिससे यह पता चलता है कि सृंजयों में राजतंत्र की दशवीं पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है और इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में दश–पुरूष राज्य का वर्णन है। राजत्व की दैवी उत्पत्ति के सिद्धांत की चर्चा भी इसी काल के साहित्य में मिलती है। राजा की घोषणा कबीले में होती थी भूमि का दान राजा कबीले की अनुमति के बिना नहीं कर सकता था। इस काल के दौरान भावी स्थायी सेना की अवधारणा के बीच भी सीमित रूप में ही सही दिखलाई देने लगे थे। यह सेना सहजातीयता के नियम पर तैयार की जाती थी ऐसा प्रतीत होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि कुरू नरेश सदा तैयार यौद्धाओं से घिरा रहता है, जो उसके पुत्र और पौत्र है और शपतथ ब्राह्मण में इस बात का उल्लेख है कि पंचाल नरेश शोण सात्राासाह द्वारा अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कराए जाते समय 6033 बख्तर बंद योद्धा तैयार थे। मान्यता ये कहती है कि राजतंत्र का उद्भव दैवीय है। इस बात को बल इसलिए मिला कि अश्वमेघ में राजा के भाग लेने के कारा राजा को दैवत्व प्रदान किया जाने लगा।

''राजा के पद से आम जन के अवपीड़न का भय था अतः उसे न्यायसंगत बनाने के लिए उपाय सोचे गए। इन उपायों में अनुष्ठान भी शामिल है जैसे कि राजसूय वाजपेय और अश्वमेध। ऐसे अनुष्ठान सम्भवतः राजा और पुरोहित वर्ग के महत्व को बढ़ावा देने के लिए सोचकर निकाले गए थे, क्योंकि पुरोहित वर्ग राजा का समर्थक था। इन अनुष्ठानों के माध्यम से सामाजिक संबंधों के नियम, विभिन्न वर्गों और स्त्री–पुरूष के सम्बन्ध निर्धारित करने के भी अवसर होते थे।''[7]

ऐतरेय ब्राह्मण में राज्य को देवताओं की रचना के रूप में देखा गया है क्योंकि इन्द्र देवताओं द्वारा नियुक्त किया गया है। इसे सामाजिक समझौता के सिद्धांत का आधार भी कह सकते हैं। क्योंकि देवताओं ने परस्पर इन्द्र को राजा के रूप में नियुक्त किया। इसको शाक्ति सिद्धांत का आधार भी मान सकते हैं, क्योंकि राजा के रूप में इन्द्र की नियुक्ति इसलिए की गई थी कि वह अन्य समस्त देवताओं में प्रमुख था शक्तिशाली था और शत्राुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।

''पाश्चात्य राजनीतिक विचारकों ने राज्य की उत्पत्ति दैवीय सिद्धांत को मान्यता प्रदान की है किन्तु उनकी इस मान्यता एवं भारतीय आचार्यों की मान्यता के बीच पर्याप्त अन्तर भी है। पश्चिम में दैवीय होने का अर्थ हमेशा सर्वोच्य ईश्वर से है जबकि प्राचीन भारतीय आचार्यों द्वारा वर्णित इन्द्र, यम और धर्म का अर्थ सर्वोच्च कर्तव्यों से है। संस्कृत में देव शब्द का प्रयोग सर्वोच्च ईश्वर एवं साधारण देवता सभी के लिये किया गया है। कुछ विचारक राज्य की उत्पत्ति के भारतीय दैविक सिद्धांत को उच्च मानवीय या अर्द्ध दैविक कहना अधिक उपयुक्त मानते हैं।''[8]

भारतीय एवं पाश्चात्य विचारों में एक महत्वपूर्ण भेद यह है कि जहां पश्चिम के विचारक राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि कहते हैं जबकि भारतीय चिंतक राजा को ही ईश्वर मान लेते हैं। राजा पांच दिक्पालों के कर्तव्यों को एक साथ सम्पन्न करता है। राजा को सर्वोच्च ईश्वर से सम्बन्धित नहीं किया गया है। वृहस्पति के अनुसार राजा मानवीय रूप में महान दिकपाल है।

प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे भी शाक्ष्य प्राप्त होते हैं जो राज्य को शक्ति सिद्धांत पर आधारित होने का संकेत करते हैं। ऋग्वेद के मंत्र इन्द्र की स्तुति करने को कहते हैं ताकि वह अपनी शक्ति से सहायता कर सके। अन्यत्र कहा गया है कि एक वर्ग के प्रमुख लोगों ने इन्द्र को राजा बनाया क्योंकि इन्द्र ने हर संघर्ष में विजय प्राप्त की। वह शक्तिशाली, दृढ़ होकर दूसरों को नष्ट कर सकता था। वह प्रचण्ड, मजबूत व साहस से परिपूर्ण था।

भारतीय आचार्यों ने राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सामाजिक समझौते की विचारधारा को भी मान्यता प्रदान की है। ऐतरेय ब्राह्मण में यह प्रसंग आता है कि इन्द्र की सम्प्रभुता का श्रोत देवताओं एवं प्रजापति द्वारा किया गया निर्वाचन था तो यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्वाचन करने वालों ने अपसी सहमति से ही इन्द्र को अपना मुखिया माना।''[9] ऋग्वेद में कहा गया है कि ''सभी लोगों को राजा की इच्छा करनी चाहिए। के. पी. जायसवाल ने इसे इच्छा का प्रतीक बताया।

ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि राजा को पुरोहित के सामने यह शपथ ग्रहण करनी होती थी कि ''अपने जन्म की रात से लेकर मृत्यु की रात तक के मध्यकाल में मेरा यज्ञ, मेरा दान, मेरा स्थान, मेरे अच्छे कार्य, मेरा जीवन आदि सब कुछ ले लिया जाये, यदि मैं इस राजपद का गलत रूप में प्रयोग करूँ।'[8] राजा द्वारा ली गई यह सपथ स्पष्ट करता है कि उसे राजपद कुछ शर्तों के अधीन दिया गया है और शर्त तभी लागू होती है जब दो पक्ष हों। और दोनों का आपस में कोई समझौता हुआ हो।

प्राचीन भारतीय समाज में यदि नागरिक अधिकारों की बात की जाय तो ये माना जा सकता है कि नागरिकों को न तो अधिकार सम्पन्न कहा जा सकता है न अधिकार विहीन। उस समय कानून की रचना जनप्रतिनिधि द्वारा तो होती नहीं थी बल्कि धर्म द्वारा कानून सुनिश्चित होता था कानून के समक्ष सभी नागरिक समान नही थे जैसे एक ही अपराध के लिए ब्राह्मण को अन्य वर्गों की तुलना में कम दण्ड दिया जाता था।

उत्तरवैदिक काल में अस्तित्व में आए गणराज्यों के शासन में जनता का स्थान होता था। अथर्ववेद में कहा गया है कि जनता बल अथवा शक्ति है। जायसवाल के मतानुसार प्राचीन भारत में मताधिकार व नागरिकता सम्बन्धी नियम भी थे। जहां तक मताधिकार का सम्बन्ध है, कुलीन गणराज्य में मताधिकार का आधार परिवार था। जिनकुल प्रजातंत्रों मे केवल बड़े–बड़े सरदारों और प्रधान पुरूषों का ही शासन होता था उनमें मत देने का अधिकार केवल कुल के आधर पर ही होता था। केन्द्र से लेकर गांव तक के पदाधिकारियों की नियुक्ति राजा द्वारा किये जाने का उल्लेख अग्नि में पुराण में मिलते हैं। इन पदाधिकारियों के कार्यों की निगरानी के लिए गुप्तचर व्यवस्था की बात की गई।

उपर्युक्त विवेचन को सारांश रूप में देखतें तो कुछ मोटी बातें सामने आती है जिसमें वेदकाल के राजनीतिक तत्व का दर्शन कराते हैं जिसमें ऋग्वैदिक काल मुख्यतः एक कबीलाई व्यवस्था

वाला शाशन था जिसमें सैन्य तत्व की प्रधानता थी। वैदिककाल में राजतंत्रात्मक प्रणाली पायी जाती थी। राजा वंशाधारित होता था किन्तु प्रजा उसे हटा सकती थी। युद्ध राजा के नेतृत्व में ही लड़ा जाता था। सभा, समित तथा विद्ध नामक प्रशासनिक संस्थाएं थी। विदथ में स्त्री पुरूष दोनों भाग लेते थे। सभा श्रेष्ठ लोगों की संस्था थी समिति आम लोगों की। राजा का प्रशासनिक सहयेाग पुरोहित एवं सेनानी आदि 12 रत्निन करते थे। इनमें से पुरोहित राजा का प्रमुख परामर्शदाता, सेनानी सेना का प्रमुख, ग्रामीण ग्राम का सैनिक अधिकारी, महिषी राजा की पत्नी, सूत राजा का सारथी, क्षति–प्रतिहार, संग्रहित–कोषाध्यक्ष, भागदुध कर एकत्र करने वाला अधिकारी, अक्षवाप– लेखाधिकारी, गोविकृत वनाधिकारी, पालागल राजा का मित्र।

संदर्भ

1. द्विजेन्द्र नाथ झा कृष्ण मोहन श्री माली प्राचीन भारत का इतिहास पेज– 128।
2. डी एन झा के एम श्रीमाली प्राचीनकाल का इतिहास पेज 8।
3. प्राचीन भारत प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय– पेज 28।
4. कृष्ण लाल वेद परिचय पेज – 169।
5. के. सी. श्रीवास्तव प्राचीन काल का इतिहास तथा संस्कृति पेज– 86।
6. झा एवं श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, पेज –132।
7. प्रकाशन विभाग सूचना प्रसारण मंत्रालय प्राचीन भारत पेज – 31।
8. सुनील कुमार भारतीय राजनीतिक चिंतन (हिन्दी माध्य निदेशालय) पेज– 44।
9. वही पेज – 49।